ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

साहित्यिक प्रतिमान और 'दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ'

ज्योति रानी

असिस्टेंट प्रोफेसर राजकीय महाविद्यालय, हीरानगर

दलित आन्दोलन का प्रयास भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मूल संरचना को रूपान्तरित करना है। जाति और उसके साथ जुड़े सामाजिक दमन आर्थिक शोषण तथा राजनीतिक प्रभुत्व को समाप्त कर, उसके स्थान पर एक समतावादी समाज को स्थापित करना ही दलित आन्दोलन का मूल उद्देश्य रहा है इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समूचे दलित साहित्य का सृजन होता है। दलित आन्दोलन और दलित साहित्य दोनों का नाभिनाल सम्बन्ध है। दोनों के प्रेरणास्त्रोत एक हैं, पृष्टभूमि एक है और कार्यकर्त्ता भी समान है।

हिन्दी दलित साहित्य के प्रतिरूप ओम प्रकाश वाल्मीकि ने अपने लेखन के माध्यम से दलित साहित्य को स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई है। अपनी अंतिम कृति 'दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ' में दलित लेखन की रचना प्रक्रिया, हिन्दी दलित साहित्य की लोकतांत्रिकता, दलित साहित्य की वैचारिकी, सामाजिक प्रतिबद्धता, संवेदना, सरोकार, दलित साहित्य की अन्तःधारा और उनका सामाजिक यथार्थ, दलित लेखन की आधुनिकता, सांस्कृतिक विरासत तथा दलित आन्दोलन की यथार्थता आदि विषयों पर गहन एवं गम्भीर चिंतन किया है। इसके अतिरिक्त परम्परागत मूल्यों पर आधारित मुख्यधारा के साहित्य और साहित्यकारों की संवेदना एवं प्रतिबद्धता का दलित दृष्टि से पुनर्मुल्यांकन भी किया है। वस्तुतः कृति की रचना कर वाल्मीकि ने दलित साहित्य की सैद्धान्तिकी का निर्माण किया है तथा विविध आलोचकों, साहित्यकारों, पाठकों द्वारा दलित लेखन पर लगाए गए आरोपों का तर्कसहित खण्डन किया है। फलस्वरूप विवेच्य पुस्तक में कुछ नवीन एवं मौलिक स्थापनाएँ भी गई हैं, जो दलित लेखकों का मार्ग प्रशस्त करती हैं अपितु दलित साहित्य और गैरदलित साहित्य दोनों के बीच के अन्तराल को पाटने का कार्य करती हैं। अतः साहित्यकारों को उत्कृष्ट साहित्य लेखन की दिशा में अग्रसर करती हैं। समीक्षकों, विद्वजनों को उनके दायित्व का विशुद्ध बोध करवाती हैं।

सर्वप्रथम दलितों ने स्वयं अपने लिए 'दलित शब्द का चयन किया है। वाल्मीकि 'दलित' शब्द को परिभाषित करते हुए लिखते हैं ''दलित शब्द का अर्थ जाति–बोधक नहीं बल्कि समूह की अभिव्यंजना देता है। सामान्य अर्थों में देखा जाए तो दलित वह है जो भारतीय समाज व्यवस्था में अस्पृश्य माना गया है ... वर्ण–व्यवस्था का अन्त्यज जिसका आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक शोषण हुआ है, जो जन्मना अछूत है, वहीं दलित की परिधि में आता है।''[i] साहित्य के साथ सम्बन्ध होकर 'दलित' शब्द ऐसे साहित्य की ओर संकेत करता है, जो मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं की यथार्थवादी अभिव्यक्ति है। जिसमें दलितों ने स्वयं के भोगे हुए जीवन की व्यथा को परत–दर–परत यथार्थपरक शैली में बयान किया है, जिन अनुभवों का वर्णन पारम्परिक साहित्य में लेश मात्र भी नहीं आ सका, इन्होंने अपने लेखन के माध्यम से इस नवीन भारतीय परिवेश से पाठक वर्ग का साक्षात्कार कराया है। जो अब तक के देखे–सुने, पढ़े भारतीय समाज की परिधि से लुप्त था। सही मायनों में हिन्दी दलित साहित्य की घुसपैठ ने परम्परावादी एवं वर्चस्ववादी भारतीय साहित्य को सम्पूर्णता प्रधान की है। इसे झूठलाया नहीं जा सकता।

बेहतर मानव एवं समाज की संकल्पना साहित्य का परम लक्ष्य है, ताकि व्यक्ति खुशहाल एवं सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। इसी बिन्दु से दलित लेखन का प्रारम्भ हुआ है और इसकी प्राप्ति के लिए वह संघर्षरत है। ओम प्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में, ''देश को देशत्व मनुष्य से मिलता है। सम्पूर्ण विश्व का नामकरण मनुष्य ने किया है। वर्ण, जाति, देव, धर्म तो कल्पनाएँ हैं, जिन्हें नकारा जा सकता है परन्तु मनुष्य को नकारा नहीं जा सकता है। निराकार को साकार रूप मिलता है उसके मानवीकरण से। तभी वह सत्य का रूप लेता है ... प्रिय बनता है ... इसलिए सभी धर्मों में ईश्वर मनुष्य जितना है और मनुष्य समान ही है। मानवीय प्रतिमान के बिना उसे पहचाना भी नहीं जा सकता है। दलित साहित्य ऐसे ही मानव की पक्षधरता के साथ खड़ा है।''[ii] अर्थात् मनुष्य को उसके अधिकारों के प्रति सचेत कर, संघर्ष की ओर प्रेरित करना ही दलित साहित्य का मूल कथ्य है। दलित साहित्य का आग्रह है कि मनुष्य को निष्ठावान, आस्थावान जैसे बंधनों से मुक्त होना चाहिए। जीवन मूल्यों में मनुष्य की स्वतन्त्रता की महत्ता सर्वोपरि होनी चाहिए। सामाजिक जीवन में समता, बन्धुता की भावना को स्थापित करके ही मनुष्य को महत्ता स्थापित होगी। स्वस्थ समाज का निर्माण तब ही सम्भव है, जब उसमें रहने वाला व्यक्ति स्वाभिमान के साथ रह सके।

दलित लेखन के प्रेरणा स्त्रोत के रूप में महात्मा बुद्ध, क्रान्तिकारी ज्योतिबा फुले तथा डॉ० भीमराव अम्बेडकर का

RRIJM 2015, All Rights Reserved

नाम उल्लेखनीय है। इनके जीवन दर्शन एवं संघर्ष से दलित समाज में चेतना का संचार हुआ है। दलित चेतना का सरोकार इस प्रश्न के साथ जुड़ा है कि 'मैं कौन हूँ', 'मेरी पहचान क्या है?' जीवन के अनुभवों को देखने और समझने की लेखकों की दृष्टि में जो विद्रोह और नकार है, वह एक आवेग है, जिसका सामर्थ्य उसकी वेदना में है। इस विषय में लेखकीय टिप्पणी स्पष्ट है, ''दलित की व्यथा, दुख, पीड़ा, शोषण का विवरण देना या बखान करना ही दलित चेतना नहीं है या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रु विगलित वर्णन, जो मौलिक चेतना विहीन हो, क्योंकि चेतना का सीधा सम्बन्ध दृष्टि से होता है। दृष्टि जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक भूमिका की छवि के तिलस्म को तोड़ती है, यह है दलित चेतना।''[iii] दलित चेतना से ही दलित साहित्य का सृजन हुआ है, यह निर्विवाद सत्य है।

दलित विमर्श में 'जाति' एक प्रमुख और प्राथमिक मुद्दा है। जो भारतीय जीवन में रचे–बसे जातीय दृष्टिकोण के उन तमाम सिद्धान्तों, चाहे वे साहित्यिक अभिव्यक्ति से सम्बन्धित हो या शिक्षा या राजनीति से सभी के वर्चस्व को ध्वस्त करने के लिए प्रतिबद्ध है, क्योंकि इन्हें ध्वस्त किये बगैर भारतीय सामाजिक संरचना को तोड़ा नहीं जा सकता। अतः समतामूलक समाज की संकल्पना कभी सम्भव नहीं हो सकती। आधुनिकता का सम्बन्ध यथार्थ से है। जीवन और समाज दोनों साहित्य की आधार भूमि हैं। समकालीन साहित्य की दृष्टि यथार्थवादी है। जीवन, जगत्, समाज को नित्य परिवर्तित एवं गतिशील रूप में देखना–समझना तथा रूपायित करना साहित्य का प्रयोजन है। अतः यथार्थवादी दृष्टिकोण वर्तमान साहित्य की कसौटी है। इस कसौटी पर यदि दलित लेखन का मूल्यांकन किया जाए तो कहा जा सकता है कि सामाजिक यथार्थ दलित साहित्य का आधार है। लेखक के शब्दों में ''दलित साहित्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करता है, इसीलिए उसकी श्रेष्ठता शब्दजीवि नहीं है। न शाब्दिक चमत्कारों तक ही सीमित है। अर्थ–गाम्भीर्य दलित साहित्य का स्वीकृत जीवन–मूल्य है। जिस पर दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र टिका है और यही उसकी रचनाओं का सामाजिक यथार्थ भी है।''[iv]

'आनन्द' भारतीय साहित्य का मूल प्रयोजन रहा है। आनन्द की रसोत्पत्ति की दृष्टि से असंख्य रचनाएँ आदिकाल से लिखी जा रही हैं, परन्तु ''यह आनन्द रस क्षणिक होता है। जिसे दलित साहित्य स्वीकार नहीं करता है। एक दलित जिस उत्पीड़न को भोगकर दुख, वेदना से साक्षात्कार करता है वह आनन्ददायक कैसे हो सकता है?''[v] यह तथ्य प्रामाणिक है। लेखक का यह प्रश्न पाठकीय संवेदना को आन्दोलित करता है। स्थापित साहित्य ने जिसे त्याज्य और निषिद्ध मानकर अपनी परिधि से अलग कर दिया, उसे ही दलित लेखकों ने अपने अनुभवों के आधार पर प्रमुखता दी है। सांस्कृतिक प्रतीक, प्रतिमान, मिथक सब दलितों के लिए अर्थहीन हैं, यद्यपि एक दलित के नज़रिए से भारतीय इतिहास की समीक्षा की जाएं, तो इसे स्वीकारने में तनिक भी संकोच नहीं हो सकता कि परम्परागत भारतीय काव्यशास्त्रीय मापदंडों के आधार पर दलित लेखक का उचित मूल्यांकन असम्भव है। दलितों ने अपना अलग सौंदर्यशास्त्र ईजाद किया है; जो समय की माँग है। जिससे दलित कविता, कहानी, आलोचना, नाटक, निबन्ध, आत्मकथा आदि विधाओं की तर्कसंगत आलोचना की जा सकती है। आलोचना कर्म के लिए प्रवृत्त आलोचक को 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' का नीर–क्षीर विवेक से अध्ययन करना पड़ेगा। तब ही वह रचना के साथ न्याय कर सकेगा।

मुख्यधारा के विद्वान, आलोचक, पाठकओं का दलित लेखन के प्रति नकारात्मक रवैया है। वे इन रचनाओं को अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। रचनाओं में रेखांकित जातीय उत्पीड़न उन्हें अविश्वसनीय लगता है। अतिरेक अतिरंजना, कोरा आलाप प्रतीत होता है, जातीय सन्दर्भ अब प्रासंगिक नहीं लग रहे। कला की दृष्टि से शिल्पहीन एवं सपाटबयानी है। इन सब आरोपों की गहरी पड़ताल कर वाल्मीकि ने विवेच्य कृति में उत्तर दिया है अर्थात् इन्हें निर्मूल सिद्ध किया है, ''दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र आध्यात्मिक न होकर भौतिकवादी है और मनुष्य के लिए समता, स्वतन्त्रता, न्याय, प्रेम जो व्यक्ति और समाज की मूलभूत भावनाएँ हैं, जो साहित्य में निहित 'आनन्द' और 'सौन्दर्य' से कई गुना अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए समता, स्वतन्त्रता और बंधुता ये तीनों मूल्य दलित साहित्य के सौंदर्य तत्त्व माने जाते हैं''[vi] दलितों और उच्च जातियों के सामाजिक जीवन के बीच में गहरा अन्तर है। आरम्भिक समय से ही दोनों नदी के दो छोर की तरह रहे हैं, एक–दूसरे के पूरक बनकर, किन्तु पानी के बीच में रहने से कभी मिल नहीं सके, भले ही पानी दोनों को आपस में जोड़ता रहा है। इन दोनों समुदायों के बीच सिर्फ काम से ही सम्बन्ध होता था। दोनों के सामाजिक जीवन के मध्य विभिन्न अन्तरों का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विश्लेषण करना अनिवार्य है। इन विभिन्नताओं को समझे बिना किसी भी निष्कर्ष तक पहुँचना, भ्रामक तथ्यों की तलाश जैसा ही है।

दलित साहित्य एक आन्दोलन है, मिशन है ताकि प्रत्येक प्रकार के विषमता भेद का निराकरण कर मनुष्य की अस्मिता को स्थापित किया जा सके। इसीलिए यहां कल्पनालोक एवं आदर्शजगत् का चित्रण न होकर भोगे हुए यथार्थ की अनुभूति की मार्मिक अभिव्यंजना है। सामाजिक जीवन में एक दलित को जिस तरह मानसिक प्रताड़ना वहन करते हुए जीना पड़ता है, उसे केवल भुक्त भोगी ही जान सकता है और जब दलित कवि अतीत से जुड़ी इन स्मृतियों को शब्दों में ढालता है तो गैरदलितों को यह सब अनावश्यक और अतिरंजित रोना–धोना लगता है। समीक्षक भले ही इसे रोना–धोना शब्दों से

नामांकित करें परन्तु वास्तविकता से विमुख नहीं हुआ जा सकता।

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। व्यक्ति जिस समाज में जन्मता है, रहता है, संघर्ष करता है, उसी का चित्रण अपनी कलम से उकेरता है। दलितों ने जिस समाज में जन्म लिया, पालन–पोषण हुआ, पढ़ा–लिखा, उसी को अपनी लेखनी में उतारा इसलिए लेखक पाठक वर्ग से प्रश्न करता है, ''इस देश की संस्कृति में पेड़–पौधों, नदियों, पशुओं को ईश्वर मानकर पूजते हैं, फिर इन्सान से नफरत क्यों? यह कैसी सांस्कृतिक विरासत है? जिस पर हमें शान्त मन से विचार और विश्लेषण की आवश्यकता है। तभी हम कह सकते हैं कि भारत एक लोकतान्त्रिक और महान देश है।''[vii] निष्कर्षतः विवेच्य कृति लेखक की उत्कृष्ट रचना है और दलित विमर्श की दृष्टि से अनुकरणीय है।

संदर्भ

i- ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य, अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, पृष्ठ–67

ii- वही, पृष्ठ–69

iii- वही, पृष्ठ–71

iv- वही, पृष्ठ–71

v- वही, पृष्ठ–71

vi- वही, पृष्ठ–70

vii- वही, पृष्ठ–103